International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(6): 68-69

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(6): 68-69
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-09-2017
Accepted: 14-10-2017

Kamini Tiwari
Department of Sanskrit
University of Rajasthan Jaipur, Rajasthan, India

Correspondence
Kamini Tiwari
Department of Sanskrit
University of Rajasthan Jaipur, Rajasthan, India

अथर्ववेद में यज्ञ की अवधारणा

कामिनी तिवारी

प्रस्तावना

यज्ञ शब्द ''यज् पूजा, संगति करण दानार्थक'' धातु से भाव में ''नङ्'' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ याग या मख (यज्ञ सम्बन्धी कृत्यहोता है। [1] निघण्टु में यज्ञ वाचक पन्द्रह शब्दों का उल्लेख मिलता है। [2] यज्ञ शब्द यजनार्थक प्रसिद्ध है। अर्थात् अधिकतर सभी लोग इस शब्द का प्रयोग यजन अर्थ में ही करते हैं। यज्ञ याचनीय है अर्थात् इससे विशेष फल की याचना की जाती है। यह यर्जुमन्त्रों से क्लिन्न होता है। अतः यज्ञ कहलाता है। औपमन्यवाचार्य का मत है कि यज्ञों में बहुत से कृष्णाजिन बिछाये जाते हैं। अतः उसे यज्ञ कहते हैं। इस यज्ञ को यर्जुमन्त्र सफल करवाते हैं। इसलिए इसे यज्ञ कहते हैं। [3] ज्ञान की परिधि में यज्ञ से पूजा संगतिकरण और दान तीन अर्थ द्योतित होते हैं। यदि हम पूज्यों की पूजा करते हैं, सत्वगुण सम्पन्न ज्ञानी एवं सदाचार परायण सत्पुरुषों की संगति में रहते हैं और ज्ञान धन एवं शरीर से दूसरों की सहायता करते हैं। तो यह जानना चाहिए कि हम यज्ञ ही कर रहे हैं। [4]

अथर्ववेद में यज्ञ के स्वरूप उसके महत्त्व तथा विविध प्रकार के यज्ञों का उल्लेख किया गया है। वहां कहा गया है कि वह (ईश्वर) एक यज्ञ है, प्रकृति उसी का कार्यरूप यज्ञ है। वह यज्ञ का शिर (सृष्टि) करने वाला है, अर्थात् सृष्टि रूप इस यज्ञ का प्रारम्भ उसी से होता है। [5] वह ईश्वर यज्ञ से उत्पन्न हुआ और उससे यज्ञ उत्पन्न हुआ। अतः ईश्वर यज्ञ स्वरूप है। [6] विश्व सृष्टि एवं संचालन रूपी इस प्राकृतिक मख में वसन्त ऋतु घृत, अग्नि समिधा और शरद ऋतु हव्य सामग्री है। [7] देवता तथा वसन्तादि षड् ऋतुएं यज्ञ की संरचना करते हैं। यही यज्ञ करने के लिए हव्य पदार्थों पुरोडाशादि घृत से बने पदार्थों तथा यज्ञ सम्पादन के साधन स्वरूप स्रुवादि यज्ञोपयोगी वस्तुओं का निर्माण करते हैं। इस विधि से प्रतिदिन यज्ञ करने वाले लोग स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं। [8] अथर्ववेद में यज्ञ के आध्यात्मिक स्वरूप पर भी विस्तार से चिन्तन किया गया है।

सम्पूर्ण भूमण्डल पर नित्य प्राकृतिक यज्ञ देवों द्वारा सम्पादित किया जा रहा है। देवगण यज्ञ से यज्ञ की पूजा करते हैं अर्थात् श्रेष्ठ याजक अपनी आत्मा के योग से परमात्मा की उपासना करते हैं। [9] यज्ञ ही उत्कृष्ट धर्म है। [10] यज्ञ प्रकट हुआ और सर्वत्र फैला है। [11] विद्वान् लोग भूमि पर यज्ञ करते हैं। यज्ञ से भूमि की समृद्धि होती है। [12] अथर्ववेद में यज्ञों की संख्या सात कही गई है। इन यज्ञों के लिए पशुओं (उनसे लभ्य घृत, दुग्धादि पदार्थों) का उपयोग किया जाता है। [13] अथर्ववेद में चार मुख्य यज्ञों के नाम मिलते हैं। राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अहिंसा रहित अश्वमेध यज्ञ। यह सब आनन्ददायक यज्ञ उस उच्छिष्ट में ही प्रविष्ट हैं। [14] अथर्ववेद में एक अन्य स्थल पर इन मुख्य चार यज्ञों का उल्लेख किया गया है। अग्निषटोम, अतिरात्र, सत्र सद्य, द्वादशाह, प्राजापत्य। [15] यज्ञ के प्रातः माध्यन्दिन एवं सायं तीन सवन होते हैं अर्थात् यज्ञ करने के तीन समय हैं। [16] आह्वानीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि इन तीनों अग्नियों का उपयोग होता है। [17] आह्वानीय अग्नि दैनिक यज्ञ के उपभोग हेतु है। गार्हपत्याग्नि विवाह के पश्चात् घर में स्थापित की जाती है। इसमें गृहस्थों के सकल संस्कार तथा वलिवैश्वदेवादि यज्ञ पूर्ण होते हैं।

दक्षिणाग्नि का प्रयोग विशिष्ट यज्ञों में किया जाता है। [18] इस अग्नित्रय में प्रथम अंगिरसों का द्वितीय आदित्यों का तथा तृतीय अग्नि दक्षिणजनों की कही गई है। [19] यज्ञ के लिए नवीन वेदिका का निर्माण किया जाता था। [20] यज्ञ का सम्पादन यजुर्वेदीय मंत्रों से करने तथा उसमें आहुति देने का विधान भी मिलता है। अदिति देवी हव्य वस्तुओं का शोधन एवं यज्ञ का विस्तार करती है। [21] यज्ञ सपत्नीक करना चाहिए। [22] ज्ञान तथा दान से यज्ञ की वृद्धि होती है। इसमें यजमान स्वाहा (आत्म समर्पण) करे। [23] यज्ञ में सात होता होते हैं जो यज्ञ में देवताओं को हवि प्रदान करते हैं। यज्ञ रूपी तीर्थ (तैरने के साधन) से विद्वान् लोग विभिन्न विपत्तियों को पार करते हैं। यह देव कार्य सम्पूर्ण सुख प्रदान करने वाला है। [24] यज्ञ प्रज्वलित अग्नि में करना चाहिए। आर्यों ने बुद्धि वृद्धि के लिए यज्ञ का विस्तार किया। सोमरस का उपयोग यज्ञपूर्वक करना चाहिए। [25] यज्ञ का मूल तत्त्व ब्रह्म है। [26]

अथर्ववेद में यज्ञ को विभिन्न शक्तियों के उदय तथा बुद्धि वृद्धि का साधन कहा गया है। यज्ञ से मन, चित्त, बुद्धि, संकल्प, स्मृति, मति, श्रवण, दर्शन शक्ति, अपान, व्यान से परिपूर्ण प्राण तथा विद्या देवी की वृद्धि एवं देवों का सानिध्य प्राप्त होता है। [27] अग्नि तथा सोम यज्ञ के दो पक्ष हैं। [28] अग्नि से तेजस्विता और श्री वृद्धि होती है। सोम शब्द का तात्पर्य सोम्य गुणों के आगमन से है। ब्राह्मण काल में इसी भाव का जगद् सृष्टि के लिए अग्नि सोमात्मक जगद् इस भाव से लिया गया है। सर्व जगद् नियन्ता (यम) ईश्वर को ही सब यज्ञ प्राप्त होते हैं। [29]

यज्ञ में स्वाहा शब्द आत्म समर्पण, स्वत्व त्याग तथा अहं त्याग का बोधक है। [30] यज्ञ करना प्रत्येक गृहस्थाश्रमी का परम कर्त्तव्य है। उसे यज्ञ करने के उपरान्त ही पुरोहित, ज्ञानी, सशक्त, बलवान बनने, ब्रह्मशक्ति तथा क्षत्रशक्ति के अभ्युदय के लिए प्रयत्न करना चाहिए। [31] ऋत्विजों को दक्षिणा देने से यज्ञ की उन्नति होती है। [32] अथर्ववेद में कहा गया है कि मानव विष्टारी ब्रह्मौदन यज्ञ के सम्पादन से अमर हो जाता है। [33] सौत्रामणि यज्ञ राजा की बिखरी हुई सम्पत्ति को केन्द्रित करने के लिए किया जाता था। [34] अथर्ववेद में दर्श एवं पौर्णमास यज्ञों का भी विवेचन प्राप्त होता है। [35]

आचार्य मनु ने मनु स्मृति में कहा है कि यज्ञ (अग्निहोत्र) करने वालों की अवनति नहीं होती। [36] मानव अभ्युदयार्थ नित्य आलस्य मुक्त होकर अग्निहोत्र करे। [37] अर्धमास की समाप्ति अर्थात् अमावस्या के दिन दर्श नामक यज्ञ तथा पूर्णिमा के दिन पौर्णमास यज्ञ का सम्पादन द्विज को करना चाहिए। [38] प चमहायज्ञों तथा पर्वयज्ञों का विधान वानप्रस्थाश्रम में भी पूर्णतया निभाने का निर्देश आचार्य मनु ने दिया है। [39] गृहस्थ को सायं प्रातः दोनों सन्धिबेलाओं में यज्ञ करना चाहिए। वानप्रस्थाश्रमी दैनिक यज्ञों को नित्य करें। उसे नक्षत्र यज्ञ, अग्रायण (नवीनान्न के आने पर किया जाने वाला यज्ञ) कार्तिक, फाल्गुन एवं आषाढ़ मास के प्रारम्भ में चातुर्मास्य यज्ञ का सम्पादन करना चाहिए।[40] परन्तु सन्यासी सर्वस्वत्याग कर अह्वानीय अग्नियों का भी परित्याग कर जगत् कल्याण के कार्य और ब्रह्म चिन्तन में रत रहता हुआ विचरण करे। [41] अर्थात् द्विज को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वनवास आश्रम में निश्चित रूप से यज्ञ का सम्पादन करना चाहिए। उसे उत्तरायण तथा दक्षिणायन के समय में विशेष यज्ञों का आयोजन करना चाहिए। वानप्रस्थी गृहस्थ से वानप्रस्थ को प्रस्थान करते हुए समस्त गृहस्थ एवं ग्राम्य वस्तुओं का परित्याग करे लेकिन यज्ञ के साधनों को साथ लेकर जाए। [42] वानप्रस्थाश्रमी का मुख्य कृत्य ही यज्ञ सम्पादन एवं ब्रह्म चिन्तन करना है। व्रत करने वाले तथा प्रायश्चित्तकर्ता को महाव्याहृतियों (ऊँ भूः भूवः स्वः) सहित यज्ञ करना चाहिए। [43] यज्ञ सम्पादन से मानव सामाजिक पापों से छूट जाता है। [44] प चमहायज्ञों और अन्य यज्ञों को करने से मानव ब्रह्म की प्राप्ति करता है। [45] आचार्य मनु ने प्रथम तीनों आश्रमों में यज्ञ को नित्यकर्म में समाहित किया है।

अग्निहोत्र से सम्पूर्ण सृष्टि का कल्याण होता है क्योंकि विधि अनुसार अग्नि में प्रक्षिप्त आहुति सूर्य को प्राप्त होती है। सूर्य की किरणों से मिलकर वातावरण में निज प्रभाव प्रतिष्ठित करती है। सूर्य से वृष्टि होती है और वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है जिससे समस्त प्राणियों का पालन पोषण होता है। [46] मनुस्मृति में कहा गया है कि ब्रह्मचारी को प्रातः सायं दोनों समयों में अग्निहोत्र करना चाहिए। [47]

अथर्ववेद में यज्ञ के निम्न भेदों का वर्णन मिलता हैं एकरात्र (एक रात भर चलने वाला) यज्ञ, द्विरात्र, सद्यः क्री, प्रक्रीः उक्थ्य, चार रात्रियों से सोलह रात्रियों तक चलने वाले यज्ञ, प्रतीहार, निधन, विश्वजित, अभिजित, अतिरात्र, द्वादशाह, अर्धमास (आधे महीने तक चलने वाले यज्ञ) मासिक यज्ञ, चार्तुमास्य (चार महीनों तक चलने वाला) यज्ञ [48] देवताओं को यज्ञ से, पितरों को स्वधा से और ब्राह्मणों को दान से प्रसन्न करना भी यज्ञ कहा गया है। [49] उस समय यह सप्त मुख्य यज्ञ माने जाते थे। जिनका सम्पादन विद्वद्जन करते थे। अथर्ववेद में गृहस्थाश्रमी के लिए अवश्य कर्त्तव्य प चमहायज्ञों को भी यज्ञ के भेदों में परिगणित किया गया है। इन यज्ञों के नाम ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, बलि वैश्वदेव यज्ञ और नृयज्ञ कहे गए हैं। [50]

संदर्भ सूची

1. ''यज् देवपूजासंगतिकरणेषु'' पाणिनि धातु पाठ, वा. शिव राम आप्टे, शब्दकोष पृ. 823
2. निघण्टु तृतीयाध्याय ''17'' यज्ञः वेनः अध्वरः इत्यादयः
3. यज्ञ कस्मात्? प्रख्यातं यजति कर्मेति नैरुक्ताः। या चो भवति इति वा। यजुरुन्नो भवति इति वा। बहकृष्णाजिन इत्यौपमन्यवः। यजुष्येनं नयन्तीति वा। निरुक्त पृ. 152
4. वै.सं. और सं. (डॉ. मुंशी राम शर्मा) पृ. 39
5. अथर्व. 3/4 (7) 40
6. अथर्व. 13/7/39
7. अथर्व. 29/6/10
8. अथर्व. 28/4/2
9. अथर्व. 7/5/1
10. अथर्व. 7/5/1
11. अथर्व. 7/5/2
12. अथर्व. 12/1/13
13. अथर्व. सप्तहोमा 8/9/18, 12/3/6 अथर्व.
14. अथर्व. 11/7/7
15. अथर्व. 9/6/28, 40 से 44 तक
16. अथर्व. 6/47/1 से 3 तक
17. अथर्व. 15/6/14, 15
18. अथर्व. का.सां.अ. (कपिलदेव द्विवेदी) पृ. 287
19. अथर्व. 18/4/8
20. अथर्व. 5/26/1
21. अथर्व. 4/26/6
22. अथर्व. 4/26/4
23. अथर्व. 4/26/12
24. अथर्व. 18/4/7, 8
25. अथर्व. 18/1/20 से 22 तक
26. अथर्व. ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं। 19/42/2
27. अथर्व. 6/41/1 से 3
28. अथर्व. 8/9/14
29. अथर्व. 28/2/1
30. अथर्व. ''तस्मा आत्मानं परिददे स्वाहा'' 19/17/1
31. अथर्व. 3/19/1
32. अथर्व. 19/19/6
33. अथर्व. 4/34/1 से 7, 4/35/1 से 8
34. अथर्व. 3/3/2
35. अथर्व. 7/79/1 से 4, 7/80/1 से 4
36. वि.मनु. 4/37
37. वि.मनु. 4/36
38. वि.मनु. 4/14
39. वि.मनु. 6/8
40. वि.मनु. 6/10
41. वि.मनु. 6/27
42. वि.मनु. 11/19
43. ''ब्राह्मीयं क्रियते तनुः'' वि.मनु. 2/3
44. वि.मनु. 3/52, गीता. 3/14
45. वि.मनु. 2/128
46. अथर्व. 11/7/10 से 20 तक
47. अथर्व. 12/4/32
48. अथर्व. का सां. अ. पृ. 203 कपिलदेव द्विवेदी
49. वि.मनु. 3/43
50. वि.मनु. 3/44, 45